

राष्ट्रभाषा की समस्या

Rashtriya Bhasha Ki Samasya

सामान्य एवं व्यावहारिक दृष्टि से समूचे राष्ट्र द्वारा व्यवहृत और संविधान द्वारा स्वीकृत भाषा ही राष्ट्रभाषा कहलाती है। संसार के प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी एक संविधान-सम्मत राष्ट्रभाषा है। वे राष्ट्र-जन और उनके नेता देश-विदेशी सभी जगह अपनी उस राष्ट्रभाषा के प्रयोग में ही गौरव का अनुभव करते हैं। वे अंग्रेजी आदि तथाकथित अंतर्राष्ट्रीय भाषाएं जानते हुए भी उन्हें देश-विदेश में प्रयुक्त करना अपना, अपने देश के संविधान, जनता और देश का धार अपमान समझते हैं। एक भारत ही ऐसा देश है, जिसे स्वतंत्र हुए लगभग पचास वर्ष बीत जाने पर भी राष्ट्रभाषा की चर्चा एक समस्या के रूप में करनी पड़ती है। है न यह घोर आश्चर्य, लज्जा और अपमान की बात। आश्चर्य तो तब होता है जब कोई विदेशी यहां हमारे घर में आकर हमारी राष्ट्रभाषा में हमसे बात करना चाहता है या वह अपनी राष्ट्रभाषा में पूछता-बोलता है। लेकिन हम बेशर्मा दांत दिखाते हुए उसकी बातों का उत्तर उसके रोकने-टोकने पर भी टूटी-फूटी अंग्रेजी में गलत-शलत ही देने में अपनी शान समझते हैं। ऐसी स्थिति में, वास्तव में हमें एक प्रभुसत्ता संपन्न, सार्वभौम राष्ट्र के निवासी कहलाने का कोई अधिकार नहीं, पर हम कहलाते हैं, शर्म से डूब नहीं करते।

राष्ट्रभाषा वही होती या हो सकती है कि जिसका अतीत उज्ज्वल रहा हो, जिसमें रचा गया साहित्य समूचे राष्ट्र और उसकी संस्कृति को समझा जाता हो। जिसे देश की अधिकांश जनता, लिख, पढ़, बोल या कम से कम समझा तो सकती ही हो। ऐसी ही भाषा किसी स्वतंत्र राष्ट्र के संविधान द्वारा स्वीकृत होकर राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त किया करती है। हमारा देश 15 अगस्त 1947 से पहले तक जब अपनी स्वतंत्रता पाने के लिए संघर्ष कर रहा था, राष्ट्रीय नेताओं की सर्वसम्मति से तभी यह निश्चय कर लिया था कि उपर्युक्त गुणों से संपन्न होने के कारण हिंदी ही स्वतंत्र भारत की राष्ट्रभाषा होगी। इसी कारण तब उत्तर-दक्षिण सभी जगह हिंदी का प्रचार-प्रसार एक राष्ट्रीय कर्तव्य मानकर किया जाता रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सन 1952 में जब हमारा संविधान बना और लागू किया गया, तब भी हिंदी को ही राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता दी गई। पर हमारे पंडित जवाहर लाल नेहरू जैसे उच्च नेता तक गलती कर बैठे। उन्होंने राष्ट्रभाषा को जारी होने के लिए अकारण

ही पंद्रह वर्ष का समय रख दिया। इन पंद्रह वर्षों में शीर्षस्थ राजनेताओं की आपस की खींचतान के कारण राष्ट्रभाषा जैसे सर्वसम्मत बात ने भी उत्तर-दक्षिण का प्रश्न खड़ा कर दिया। स्वतंत्रता से पहले जिन्होंने मुक्तभाव से हिंदी को राष्ट्रभाषा माना था, अब वही हिंदी-साम्राज्यवाद और हिंदी थोपने जैसी भोंडी बातें करने लगे। परिणामस्वरूप पंद्रह तो क्या लगभग पचास वर्ष बी गए, फिर भी हम राष्ट्रभाषा की चर्चा एक समस्या के रूप में करने को बाध्य हैं। कितनी दायनीय स्थिति है हमारी मानसिकता और सर्वस्वीकृत संविधान की। इसे गुलाम मानसिकता ही तो कहा जा सकता है।

जब भारत स्वतंत्र हुआ, लोगों ने बड़े जोर-शोर से हिंदी पढ़ना-लिखना शुरू कर दिया था। दक्षिण भारत, हिंदी प्रचार समिति की परीक्षाएं भी बड़े जोर-शोर से होने लगी थीं। उत्तर-दक्षिण या पूर्व-पश्चिम का कहां कोई सवाल नहीं था। पर धीरे-धीरे जब लोगों ने देखा कि नेता ही संविधा और उसके द्वारा स्वीकृत राष्ट्रभाषा की उपेक्षा कर रहे हैं, उसका कोई भविष्य ही नहीं है, तो लोगों का सारा उत्साह ही ठंडा पड़ गया। आज या तो लोग यह कहकर हिंदी की ओर ध्यान नहीं देते कि 'अरे यह हिंदी-विंदी क्या पढ़ना' या 'फिर हिंदी बड़ी ही कठिन यानी रफ भाषा है, उसे पढ़-लिख पाना हमारे वश की बात नहीं।' और भी कई प्रकार के आरोप लगाए जाते हैं कि हिंदी में ज्ञान-विज्ञान विषयों से संबंधित तकनीकी पुस्तकें नहीं आदि। वह हो भी कैसे सकती हैं कि जब उसकी उपेक्षा कर दी गई और उसके भविष्य की भी संभावना तक नहीं रहने दी गई। यों हिंदी के नाम पर लाखों रुपया खर्च किया जाता है। भाषणबाजी और कागजी कार्यवाही भी बहुत होती है। पर व्यवहार के स्तर पर सभी कुछ व्यर्थ होकर रह जाता है।

आज भाषा की समस्या के लिए कभी द्विभाषा फार्मूला सामने लाया जाता है और कभी त्रिभाषा का, जो एक व्यर्थ के बोझ और बकवास के सिवा और कुछ नहीं। एक राष्ट्रभाषा का होना स्वतंत्र राष्ट्र की सबसे पहली शर्त है। उसके बाद कोई दो भाषाएं पढ़ें या तीन, इससे राष्ट्र को कोई फर्म नहीं पड़ता, पढ़ने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है। हमारी राष्ट्रभाषा नहीं है, इसी कारण आज हम अपने ही घर में एक-दूसरे को समझ पाने में, पारस्परिक भाई-चारे या भावनात्मक एकता का संवाद शुरू कर पाने में असमर्थ हैं। एक प्रांत का व्यक्ति दूसरे प्रांत में पहुंच विदेशी का सा अहसास करने लगता है। राष्ट्रभाषा और उसी में सभी प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण आज देश में शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। विदेशी सभ्यता-संस्कृति हम पर बुरी तरह प्रभावी होती जा रही है

और भी कई प्रकार की प्रत्यक्ष-परोक्ष बुराइयां पनप रही हैं। हम सब एक देश के निवासी होकर भी स्वतंत्रता प्राप्ति के पचास वर्षों बाद अजनबीपन के माहौल में जीने का बाध्य हैं। इन सबसे छुटकारे का एकमात्र उपाय है अपनी भाषा और उसी में सब प्रकार की शिक्षा-दीक्षा, वही हमें अपनी सभ्यता-संस्कृति से जोड़े रख सकती है। नहीं तो आज संबंधों की जो टूटन जारी है, वह हमें एकदम तोड़कर हमारी स्वतंत्र सत्ता तक को बिखेरकर रख देगी। एक देश में कई भाषाई टापू उभरकर देश का मानचित्र ही बिगाड़ देंगे। अतः तत्काल सावधान हो जाने की सारे देश में एक राष्ट्रभाषा लागू करने की आज पहली आवश्यकता है।